विशिष्टाद्वैत वेदान्त में प्रत्यक्ष प्रमाण

पूनम शुक्ला*

श्रुतियों पर आधारित एवं प्रस्थानत्रयी की व्याख्या के रूप में पल्लवित हिन्दू दर्शन वेदान्त कहलाते हैं। तथाकथित वेदान्त दर्शनों में शंकर के अद्वैत के बाद रामानुज का विशिष्टाद्वैत विशेष प्रतिष्ठित रहा है। शंकर के अद्वैत में जगत् को मिथ्या कहा गया है और कर्म को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। इसके विपरीत, रामानुज जगत् को वास्तविक, वर्णाश्रम को अनिवार्य और भक्ति को (जो उनके अनुसार, एक प्रकार का ज्ञान ही है) मोक्ष का आवश्यक साधन मानते हैं। तत्त्व–मीमांसा में वे भी एक प्रकार के अद्वैतवाद के समर्थक हैं, किन्तु उनका अद्वैत विशिष्टाद्वैत है। रामानुज के अनुसार ब्रह्म–तत्त्व निर्विशेष नहीं, सविशेष है, जीव और जगत् उसे विशेषित करते है और उसके शरीर जैसे है। संसार में कोई भी तत्त्व निर्विशेष नहीं है, निर्विशेष का ज्ञान भी सम्भव नही है। हमारे सारे वक्तव्य सविशेष–विषयक होते हैं। रामानुज का कथन है कि यदि ब्रह्म को निर्विशेष का निर्गुण माना जाय तो श्रुति के वाक्य उसके सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं दे सकेंगे। रामानुज की ज्ञान–मीमांसा में तथाकथित निर्विकल्पक प्रत्यक्ष का विषय भी निर्विशेष वस्तु नहीं होती, वहाँ भी सविशेष का ज्ञान ही होता है, किन्तु सविशेष शब्द द्वारा कथित नहीं होता।

रामानुज ने शंकर के मायावाद का विस्तार से खण्डन किया है। शंकर और रामानुज के आत्म–विषयक मतों में भी महत्त्वपूर्ण भेद है। शंकर आत्मा को ज्ञान–स्वरूप मानते हैं, रामानुज के मत में आत्मा ज्ञान नहीं, ज्ञाता है आत्मा धर्मभूत ज्ञान से सहचरित रहता है। आत्मा अपने में अणु है किन्तु उसका धर्मभूत ज्ञान विभु है। तथाकथित मनोदशाएँ–ज्ञान, सुख–दुःख आदि सब धर्मभूत ज्ञान के विकार या परिणाम है।

वस्तुओं के रूप में प्रकाशक ज्ञान बुद्धि द्वारा इन्द्रियों की सहायता से अपने प्रकाश्य के सम्बन्ध में आता है। प्रकाश्य वस्तु की वास्तविक अवस्था और

***शोधच्छात्रा (संस्कृत विभाग) इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद**

व्यवहारिक उपयोगिता का ज्ञान प्रमा कहा जाता हैं–

यथावस्थितव्यवहारानुगुणज्ञानं प्रमा।[1]

हम साधारण तौर पर जिसे ज्ञान कहते हैं वह प्रमा ही है। इस प्रमा की उत्पत्ति के कारण को प्रमाण कहते है इस प्रकार ज्ञान के साधन से हमारा अभिप्राय प्रमाणों से है। रामानुज ज्ञानोत्पत्ति के लिए केवल तीन ही प्रमाण स्वीकार करते हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। उनके मत में स्मृति और प्रत्यभिज्ञा स्वतंत्र प्रमाण नहीं है। इनको प्रत्यक्ष में ही अन्तर्भूत कर सकते हैं। इसी प्रकार उपमान और अनुपलब्धि अथवा अर्थापत्ति भी अनुमान में समाविष्ट किये जा सकते हैं। प्रत्यक्ष साक्षात्कारी प्रमा का कारण है। साक्षात्कारिणी प्रमा से अभिप्राय ऐसे ज्ञान है जो वस्तु एवं इन्द्रियों के सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है। यह अनुमान से भिन्न है। क्योंकि अनुमान में इन्द्रिय–वस्तु–सम्बन्ध नहीं स्थापित होता है। प्रत्यक्ष में इन्द्रियाँ वस्तु को ग्रहण करती हैं और मन द्वारा आत्मा को वस्तु का साक्षात्कार कराती हैं। अथवा द्रव्य–रूप ज्ञान इन्द्रियों के माध्यम से निकलकर वस्तु (द्रव्य) से संयुक्त होता है– **''ज्ञानमपीन्द्रिय द्वारा निः सृत्यार्थेन सन्निकृष्यते।''**[2] साक्षात्कार आत्मा को होता है, क्योंकि प्रत्यक्षीकरण में आत्मा मन से संयुक्त होती है और मन इन्द्रियों से। वस्तु के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध दो प्रकार से होता है, संयोग एवं संयुक्ताश्रयण। जब इन्द्रियाँ पदार्थ को ग्रहण करती है तो संयोग सम्बन्ध होता है, लेकिन जब वे द्रव्य के रूप इत्यादि गुणों का ग्रहण करती हैं तो संयुक्ताश्रयण सम्बन्ध होता है। गुण द्रव्य पर आश्रित हैं इसलिए उनका ग्रहण द्रव्य से अलग करके नही हो सकता। द्रव्य और गुण का संयुक्त प्रत्यक्ष होने के कारण गुणों के प्रत्यक्ष में इन्द्रिय और विषय में संयुक्ताश्रयण सम्बन्ध माना गया है। वस्तु और ज्ञान संयोग सम्बन्ध होता है अतः दोनों, ज्ञान और ज्ञान का विषय अलग–अलग वस्तुएँ हैं और भिन्न–भिन्न वस्तुओं का ज्ञान भी वैसा ही होता है। किसी ज्ञाता या ज्ञेय वस्तु से संयुक्त हुए बिना ज्ञान की प्राप्ति होती ही नहीं।

निर्विकल्पक और सविकल्पक प्रत्यक्ष–

प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद होते हैं– निर्विकल्पक प्रत्यक्ष और सविकल्पक प्रत्यक्ष। किसी विशिष्ट विषय या वस्तु का प्रथम साक्षात्कार या प्रथम पिण्ड ग्रहण ही निर्विकल्पक प्रत्यक्ष है– **''अतो निर्विकल्पकमेकजातीयद्रव्येषु प्रथम पिण्डग्रहणम्। द्वितीयादिपिण्डग्रहणमेव सविकल्पकमित्युच्यते।''**[3]

यह एक ऐसा प्रत्यक्ष है जिसमें हम किसी पदार्थ के एक ही उदाहरण का, उनके समान अन्य उदाहरणों के अभाव में भी, ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रत्यक्ष में भी हम सविशेष वस्तु को ही जानते हैं। केवल अन्य उदाहरणों से उनकी भिन्नता की ओर निर्विकल्पक प्रत्यक्ष में हम ध्यान नहीं देते। अभिप्राय यह है कि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष 'प्रथम पिण्ड' का प्रत्यक्ष है। प्रथम पिण्ड का ग्रहण निर्विकल्पक होने का अभिप्राय यह नही है कि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष–शून्य या सभी विशेषताओं से शून्य अथवा शुद्ध संवेदन मात्र है। निर्विकल्पक का तात्पर्य है किसी एक विशेष या धर्म से रहित ज्ञान। रामानुज निर्विकल्पक प्रत्यक्ष को अद्वैतियों अथवा नैयायिकों द्वारा मान्य अर्थ में निर्विशेष नहीं मानते, क्योंकि उनके अनुसार सभी ज्ञान सविशेष एवं सविषय है। द्रव्य और गुण, जाति और व्यक्ति, सामान्य और विशेष कभी अलग नहीं हो सकते, अतः किसी निर्गुण द्रव्य का, या मात्र जाति अथवा सामान्य का ज्ञान सम्भव नहीं है।

सविकल्पक प्रत्यक्ष किसी वस्तु का अपनी जाति के अन्य ज्ञात उदाहरणों के साथ किया गया प्रत्यक्ष है। इसके द्वारा हम किसी वस्तु के एक उदाहरण को अकेले नहीं जानते बल्कि उस वस्तु की जाति एवं साधारण और असाधारण गुणों का भी प्रत्यक्ष करते हैं। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष की भाँति सविकल्पक प्रत्यक्ष में पहले देखे गये उदाहरणों का अभाव नहीं होता। परिणामस्वरूप सविकल्पक प्रत्यक्ष निर्विकल्पक प्रत्यक्ष की तुलना में अधिक स्पष्ट एवं पूर्ण होता है। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के प्रत्यक्षीकरण गुण ही सविकल्पक प्रत्यक्ष में पुनः देखे जाते हैं, परन्तु इस बार उनका ज्ञान गुण के रूप में होता है। उस स्थिति में हम वस्तु को मात्र वस्तु के रूप में नहीं ग्रहण करते बल्कि वस्तु को हम गुणों से संयुक्त करके जानते हैं। एक मेज का सविकल्पक प्रत्यक्ष हमारे समक्ष उस मेज को मेज के अन्य उदाहरणों के साथ, उसमें प्राप्त साधारण और असाधारण गुणों के ज्ञान सहित, उपस्थित करता है। अर्थात् मेज को केवल मेज न जानकर लाल, भूरा अथवा गोल, वर्गाकार, छोटी या बड़ी मेज के रूप में जानते हैं। अभिप्राय यह है कि जब हम किसी वस्तु के अपेक्षामूलक गुणों का प्रत्यक्ष कर उसकी जाति का निश्चय कर लेते हैं और साथ ही यह जान लेते हैं कि वह वस्तु अपने जैसी ही अन्य वस्तुओं से किस प्रकार भिन्न है, तो हमारा प्रत्यक्ष सविकल्पक प्रत्यक्ष कहा जा सकता है।

प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण करने से पता चलता है कि रामानुज प्रत्यक्षीकरण को चार चरणों में पूरी होने वाली क्रिया मानते हैं। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रत्यक्षीकरण की प्रथम स्थिति है। उसमें पहले अनुकूल पदार्थों का स्मरण अथवा अनुवृत्ति ज्ञान

नहीं होता। दूसरे चरण में एक के अतिरिक्त दूसरे उदाहरण से सम्पर्क होता है, साथ ही पहले सम्पर्क का स्मरण भी रहता है। तीसरा चरण दो या अधिक उदाहरणों के सामान्य गुणों की अनुभूति कराता है। चौथा और अन्तिम चरण सामान्य और विशेष गुणों को स्पष्ट करता है। सविकल्पक प्रत्यक्ष दूसरे चरण से प्रारम्भ होता है और चौथे चरण में पूर्ण हो जाता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण की यह विशेषता है कि इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान का विषय प्रत्यक्षीकरण का समकालिक होता है, अर्थात् उसी वस्तु का बोध कराता है जो वर्तमान (प्रत्यक्ष होने के) समय में विद्यमान रहती है।

सन्दर्भ–

1. यतीन्द्रमतदीपिका, पृ0 3
2. यतीन्द्रमतदीपिका, पृ0 56
3. श्रीभाष्य 1/1/1